कुश्ती संघ के मामले में प्रधानमंत्री की क्या मजबूरी

योगेन्द्र यादव

जो सवाल पहले किसान पूछ रहे थे वही सवाल आज पहलवान पूछ रहे हैं। आखिर प्रधानमंत्री चुप क्यों हैं? आपराधिक छवि वाले और संगीन आरोप झेल रहे नेता के खिलाफ कदम क्यों नहीं उठाते? आखिर प्रधानमंत्री की क्या मजबूरी है? महिला पहलवानों द्वारा लगाए गए आरोप सामान्य नहीं हैं। आरोप ऐसे हैं कि किसी भी संवेदनशील इंसान का दिल दहल उठे, किसी भी देशभक्त का सिर झुक जाए। आरोप यह है कि महिला पहलवानों का यौन शोषण आज नहीं कोई 10 साल से चल रहा है।

आरोप है कि यौन शोषण में केवल एक व्यक्ति नहीं कुश्ती फैडरेशन के अनेक कोच भी शामिल हैं। आरोप है कि इनके शिकारों में नाबालिग बच्चियां भी शामिल रही हैं। यह आरोप लगाने वाली कोई एक महिला नहीं बल्कि अनेक महिला खिलाड़ी हैं। आरोप की गंभीरता स्वयं सुप्रीम कोर्ट ने स्वीकार की है। आरोप यह भी है कि बृज भूषण शरण सिंह के खिलाफ शिकायत दो साल पहले सीधे प्रधानमंत्री को स्वयं साक्षी मालिक ने की थी। बृज भूषण शरण सिंह के खिलाफ यह पहला आरोप नहीं है।

6 बार लोकसभा के सांसद रह चुके बृजभूषण के चुनावी हल्फनामे उनके आपराधिक रिकॉर्ड की कहानी बयान करते हैं। पिछले लोकसभा चुनाव में उनके

हल्फनामे में धारा 307 (हत्या का प्रयास) सहित 4 आपराधिक मामलों का जिक्र था। एक और हत्या के मुकद्दमे में वह साक्ष्य के अभाव में बरी हो चुके हैं। सांसद महोदय खुद अपने अपराध को स्वीकार करते हैं। पिछले साल लल्लनटॉप को दिए वीडियो इंटरव्यू में उन्होंने स्वयं कहा था,''मेरे जीवन में मेरे हाथ से एक हत्या हुई है, लोग जो कुछ भी कहें, मैंने एक हत्या की है।'' लेकिन उस हत्या के मामले में इन पर मुकद्दमा भी चला हो, इसका कोई रिकॉर्ड नहीं है।

वर्ष 2004 के लोकसभा चुनाव में जब भाजपा ने गोंडा से उनकी जगह घनश्याम शुक्ला को उम्मीदवार बनाया तो मतदान वाले दिन ही एक दुर्घटना में शुक्ला की मौत हो गई। इस मौत के पीछे बृज भूषण का हाथ होने का संदेह किसी और ने नहीं स्वयं अटल बिहारी वाजपेयी ने व्यक्त किया और इस बात का खुलासा किसी और ने नहीं स्वयं बृजभूषण ने 'द स्क्रोल' को दिए इंटरव्यू में किया। सवाल यह है कि ऐसे व्यक्ति को प्रधानमंत्री का संरक्षण क्यों प्राप्त है? सवाल की गहराई में जाएंगे तो आप पाएंगे कि बृज भूषण अपवाद नहीं हैं। एक लंबी फेहरिस्त बन सकती है भाजपा के उन नेताओं की जिनके विरुद्ध महिलाओं के यौन शोषण के गंभीर आरोप लगे, लेकिन भाजपा या प्रधानमंत्री मोदी द्वारा कोई गंभीर कार्रवाई नहीं हुई।

इस सूची में कुलदीप सेंगर, चिन्मयानंद स्वामी, साक्षी महाराज, एम.जे. अकबर, उमेश अग्रवाल, बर्नार्ड मराक और संदीप सिंह का नाम होगा। उधर तथाकथित बाबा राम रहीम और आसाराम से भाजपा की नजदीकियां किसी से छुपी नहीं हैं। याद करें तो अपने प्रधानमंत्री काल में हाथरस, कठुआ या बिलकिस बानो जैसी महिलाओं के विरुद्ध बलात्कार या शोषण की प्रमुख घटनाओं पर प्रधानमंत्री ने अजीब चुप्पी बनाए रखी है। यह सवाल नया नहीं है। यह सवाल किसानों ने केंद्रीय गृह राज्यमंत्री अजय मिश्र टेनी के बारे में पूछा था। दिन-दिहाड़े किसानों की हत्या के आरोपी के पिता और उस हत्याकांड की साजिश के मुख्य आरोपी अजय मिश्र टेनी आज भी मंत्रिमंडल में क्यों बने हुए हैं?

आज वही सवाल बृज भूषण शरण सिंह के बारे में उठ रहा है। 'बेटी बचाओ' का नारा देने वाले प्रधानमंत्री नाबालिग लड़की द्वारा यौन शोषण का आरोप लगाए जाने के बावजूद बृज भूषण को अभयदान क्यों दे रहे हैं? इन खिलाड़ियों को भारत का गौरव बताने वाले मोदी जी बृज भूषण शरण सिंह को कुश्ती संघ के अध्यक्ष के पद से हटाने जैसी सामान्य कार्रवाई से क्यों झिझक रहे हैं? इस साल जनवरी में यह कांड सार्वजनिक होने के बावजूद और खिलाड़ियों को समुचित कार्रवाई का आश्वासन मिलने के बाद भी कोई कार्रवाई क्यों नहीं हो सकी? इस प्रश्न के दो ही उत्तर हो सकते हैं। या तो राजनीतिक मजबूरी का मामला है या फिर नैतिक कमजोरी का। यौन शोषण के यह सब आरोपी अपने-अपने इलाके के दबंग नेता हैं और कुछ जातियों के वोटों के ठेकेदार हैं। इन नेताओं के खिलाफ कार्रवाई करने का मतलब होगा भाजपा के वोट बैंक में घाटे का जोखिम उठाना।

अगर यही कारण है तो फिर कुछ और सवाल खड़े होते हैं। क्या देश का 'सबसे लोकप्रिय और ताकतवर' नेता कुछ स्थानीय क्षत्रपों के सामने इतना निरीह है? आखिर बृजभूषण किस बूते पर यह धमकी देते हैं कि अगर मैंने मुंह खोला तो सुनामी आ जाएगी? जो नरेंद्र मोदी भाजपा के बड़े-बड़े नेताओं को किनारे लगा चुके हैं वह इन छुटभैया नेताओं के सामने मजबूर क्यों हैं? और अगर इतने ही मजबूर हैं तो फिर किस मुंह से राष्ट्र गौरव और बेटी बचाओ की बात करते हैं? हम नहीं जानते कि प्रधानमंत्री के मन में क्या है और आशा यही करनी चाहिए कि यह सच नहीं है। लेकिन क्या साक्षी मलिक के आंसू, बृज भूषण की ढिठाई और प्रधानमंत्री की चुप्पी को देखने वाली करोड़ों भारतीय महिलाओं को ऐसा महसूस नहीं होगा? जब तक प्रधानमंत्री अपनी चुप्पी नहीं तोड़ेंगे तब तक ये सवाल मुंह बाए खड़े रहेंगे।

हिंदुत्ववादी फासिज्म का विकट अंधकार युग

असद जैदी

दरअसल हिन्दुत्ववादी फ़ासिज़्म ब्राह्मणवादी और मुस्लिम-विरोधी उन्माद में लिथड़ा हुआ, पेटी-बुर्जुआ वर्गों का एक धुर-प्रतिक्रियावादी सामाजिक आंदोलन या रोमानी उभार है जो नवउदारवाद के दौर में इजारेदार और वित्तीय पूँजी के खूँख़्वार पालतू कुत्ते की भूमिका निभा रहा है। इस घनघोर प्रतिगामी सामाजिक आन्दोलन को आरएसएस के कैडर-आधारित संगठन ने समाज के तृणमूल स्तर से एक लंबी और सुव्यवस्थित प्रक्रिया चलाकर संगठित किया है। इसके विरुद्ध फैसलाकुन संघर्ष को संगठित करने के लिए शुरुआत से शुरुआत करनी होगी और मज़दूर वर्ग, अन्य मेहनतकश वर्गों तथा निम्न-मध्य वर्ग के रैडिकल, सेक्युलर, प्रबुद्ध हिस्से का एक रैडिकल प्रगतिशील सामाजिक आन्दोलन तृणमूल स्तर से संगठित करना होगा। बेशक़ यह एक लंबी, कठिन और चुनौतीपूर्ण प्रक्रिया होगी लेकिन दूसरा कोई भी रास्ता नहीं है। बहुत देर हो चुकी है लेकिन फिर भी शुरुआत तो कहीं से करनी ही होगी।

कमर कसकर सड़कों पर तो उतरना ही होगा। अन्यथा रस्मी और प्रतीकात्मक कवायदों से मन की तसल्ली के सिवाय और हासिल भी क्या होगा!

इक्कीसवीं सदी के भारत में फासिस्ट उभार और वर्चस्व की प्रक्रिया नवउदारवादी दौर के पूँजीवादी संकट का राजनीतिक नतीजा और प्रतिसाद तो है ही, लेकिन साथ ही, यह वाम आन्दोलन की विचारधारात्मक कमज़ोरी के कारण मिली विफलता, पराजय और पतन का भी नतीजा है। यह कहना एकदम सही है कि फ़ासिज़्म मेहनतकश वर्गों को क्रान्ति न कर पाने के लिए मिला ऐतिहासिक दण्ड है।

जिन संसदमार्गी वाम दलों ने संसदीय सुअरबाड़े को ही अपना परम लक्ष्य और समाजवाद लाने का साधन बना लिया, जिन्होंने मज़दूर वर्ग और मेहनतकश जनसमूह की राजनीतिक चेतना को कुशाग्र एवं उन्नत बनाने की जगह उसे अर्थवाद और ट्रेड यूनियनवाद के दलदल में धँसा दिया, जिन्होंने तृणमूल स्तर से मेहनतकश जनता का जुझारू सामाजिक आन्दोलन खड़ा करने पर कभी ध्यान नहीं दिया, वे संसदीय विभ्रमों के प्रचारक बनकर रह गये और दण्डस्वरूप, कालान्तर में स्वयं दयनीय दुर्गति को प्राप्त हुए। और जब फ़ासिज़्म की काली आँधी आयी तो उसके विरोध में खड़ा होने की न तो उनके पास संकल्प-शक्ति थी, न जुझारू कतारें थीं और न ही जनसमुदाय था। ऐसी स्थिति में तमाम बुर्जुआ राजनीतिक पार्टियों का चुनावी मोर्चा बनाकर चुनाव में हराकर फ़ासिस्टों को पीछे धकेल देने का मुग़ालता पालने के अतिरिक्त और भला वे कर भी क्या सकते थे! ये वही बुर्जुआ राजनीतिक पार्टियाँ हैं जिनमें से हर कोई कभी भी पाला बदलकर हिन्दुत्ववादी फ़ासिस्टों की गोद में जा बैठने को तैयार रहता है। और जो सबसे बड़ी और पुरानी, राष्ट्रीय स्तर की बुर्जुआ पार्टी -- कांग्रेस है, वह दशकों से नरम केसरिया लाइन का कार्ड खेलती रही है। नवउदारवाद की नीतियों को लागू करने की शुरुआत इसी पार्टी ने की थी और कोई भी ऐसी बुर्जुआ पार्टी नहीं है जिसे नवउदारवाद से रंचमात्र भी परहेज़ हो। ऐसी पार्टियों का कोई भी गठबंधन अगर सत्ता में आ भी जाये तो वह नवउदारवादी नीतियों को ही लागू करेगा और वह सत्ता फ़ासिस्ट सत्ता तो नहीं होगी, लेकिन बोनापार्टिस्ट किस्म की निरंकुश दमनकारी सत्ता ही होगी। दूसरी ओर फ़ासिस्ट अपने व्यापक सामाजिक आधार के साथ समाज में बने रहेंगे, अपनी ख़ुराफ़ातें जारी रखेंगे और फिर से सत्ता में आने की कोशिश करते रहेंगे। यह मोटी सी बात भी समझने की ज़रूरत है कि फ़ासिज़्म विरोधी मोर्चा कोई चुनावी मोर्चा नहीं होता। वह सड़कों पर दीर्घकालिक 'पोज़ीशनल क्लास वारफेयर' का एक संयुक्त मोर्चा होता है। जिन बुर्जुआ दलों को सभी सोशल डेमोक्रेट्स फ़ासिज़्म विरोधी मोर्चे का संभावित भागीदार समझते हैं, वे अब सड़क पर उतरकर लड़ ही नहीं सकते। उनके पास उसूल के नाम पर संसदीय सुअरबाड़े में लोट लगाने की नीतियाँ हैं और उसूलपरस्त कैडर की जगह सड़क के गुण्डे-मवाली और भाड़े के टट्टू। ख़ुद संसदमार्गी वाम में भी सड़क के संघर्ष की कुव्वत नहीं बची।

इक्कीसवीं सदी में फ़ासिज़्म के विरुद्ध 1930 के दशक जैसा कोई पॉपुलर फ्रंट नहीं बन सकता। अगर कोई संयुक्त मोर्चा संभव है तो वह मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी संगठनों, जनसंगठनों, मंचों और आन्दोलनों का ही मोर्चा हो सकता है। इस मोर्चे में मध्य वर्ग के रैडिकल प्रगतिशील हिस्से और क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी एवं संस्कृतिकर्मी भी शामिल होंगे। किसी भी और चीज़ से उम्मीद पालना आकाश-कुसुम की अभिलाषा के समान होगा।

सुविधाभोगी मध्य वर्ग का लिबरल, छद्मवामी और छद्म सेक्युलर हिस्सा भी खुले या छिपे तौर पर, अपने 'हिन्दू' मन और संस्कारों को लिये-दिये, वस्तुगत तौर पर फ़ासिज़्म की ही सेवा कर रहा है।

कला-साहित्य की दुनिया में यही वे लोग हैं जो कला के 'पोलिटिसाइज़ेशन' के विरोध में खड़े हैं, और राजनीतिक जीवन का 'एस्थेटाइज़ेशन' करने का काम कर रहे हैं। ये लोग 'सेंटीमेंट्स' को 'पोलिटिसाइज़' करने की जगह 'पॉलिटिक्स' को 'सेंटिमेंटलाइज़' करने का काम करते हैं और वैचारिक स्तर पर फ़ासिस्टों के सामाजिक आधार को मज़बूत बनाने का काम करते हैं। यही वे लोग हैं जो फ़ासिस्ट लहर के ख़िलाफ़ जनता को जुझारू लामबंदी का संदेश देने की जगह उसे करुणा, दया, क्षमाभाव, अहिंसा आदि की नसीहतें दे रहे हैं, उसे वैचारिक तौर पर निश्शस्त्र कर रहे हैं और वर्णाश्रम का आदर्शीकरण करने वाले तुलसी तक में प्रगतिशीलता के मूल्यों का आविष्कार कर रहे हैं। यही वे लोग हैं जो एक सुर में बुद्ध से लेकर गाँधी तक का जाप करते हुए, गोडसे में भी मनुष्यता की खोज करते हुए और साथ ही मार्क्स का भी नाम लेते हुए, अपना मानवतावादी रेशमी चोंगा पहने हत्यारों से पुरस्कार लेने सजे-धजे मंचों पर पहुँच जाते हैं और हत्या और आतंक के मौसम में रंगारंग साहित्योत्सवों में विहार करते पाये जाते हैं। इनके कई रूप-रंग हैं, लेकिन दरअसल नस्ल एक ही है।